उपसंहार

हिंदी तथा मराठी साहित्य में आत्मकथा विधा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आत्मकथा साहित्य की ऐसी विधा है जो कल्पना को स्थान न देकर अपनी बात यथार्थ रूप में करती है। साहित्य में कल्पना और यथार्थ दोनों रूप मिलते है। कल्पना में प्रमाणिकता का अभाव रहता है लेकिन यथार्थ प्रमाणिक होता है। आत्मकथा में यथार्थ रूप होने के कारण प्रमाणिक मानी जाती है। भारतीय समाज व्यवस्था में अंतिम छोर पर जीवन जीने वालों की व्यथा दलित आत्मकथा में मिलती है, जिसे हिंदी एवं मराठी रचनाकारों ने पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। हिंदी कथासाहित्य में आत्मकथा लेखन की प्रेरणा मराठी आत्मकथाओं से आयी है। इन आत्मकथा से प्रेरणा लेकर समाज के सामने भयावह एवं नारकीय जीवन जीने को मजबूत दलित समाज ने पाठक के सामने प्रस्तुत किया है। धर्म और वर्ण व्यवस्था के नाम पर अमानवीय एवं अलोकतांत्रिक बर्ताव करने वालों लोगों के मुखौटे को उतार दिया है। दलित रचनाओं ने समाज में शोषण एवं अत्याचार के स्वरूप को सामने रखा और साथ ही साथ उनसे मुक्ति के मार्ग भी बताये। इसलिए मराठी और हिंदी दलित आत्मकथा पर शोध कार्य करने में रूचि जागृत हुई। मराठी भाषा के साहित्य के पाठकों की सीमा है, लेकिन हिंदी भाषा में अनूदित होकर यह रचनायें अन्य पाठकों तक पहुँच रही है, जिसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा। हिंदी दलित रचनाकारों ने दलित रचनाओं के माध्यम से अपने समाज के सामाजिक परिवेश एवं धार्मिक मान्यताओं के विषय में बताया। आत्मकथा विधा यथार्थ पर आधारित है, इसलिए आत्मकथा के माध्यम से दलित आत्मकथाकर ने स्वयं की जीवनी, परिवेश का चित्रण, विश्वसनीयता, रोचकता और उद्देश्य का चित्रण किया है।

हिंदी और मराठी दलित आत्मकथा में जीवन जीने के लिए संघर्ष के साथ-साथ शिक्षा को लेकर जागरूकता आ रही है। मराठी और हिंदी की आत्मकथाओं को पढ़ने के दौरान उनकी समस्याएँ एक जैसी दिखाई देती हैं, लेकिन मराठी आत्मकथा में डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों का प्रभाव

अधिक दिखाई देता है। मराठी दलित समाज ग्रामीण से शहर की तरफ पलायन कर रहा हैं, जबकि हिंदी आत्मकथा में यह पलायन उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा है जो शिक्षा या मेहनत-मजदूरी करने शहर जाते हैं, लेकिन उनका परिवार गाँव में ही निवास करता है।

दलित रचनाओं में नकारे गए समाज के दुखों और यातनाओं का इतिहास है। दलित समाज को देखे तो ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में अन्य जातियों से संवेदनाओं का आदान-प्रदान बहुत कम होता है। साहित्य में संवेदनाएं तो दिखाई देती हैं, लेकिन दलित समाज की संवेदनाएं बहुत कम देखने को मिलती हैं। दलित रचनाकारों ने अपने समाज की संवेदनाओं को विमर्श के केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया। जाति व्यवस्था के कारण भेदभाव और मनुष्य को मनुष्य न मानना अमानवीय है। दलित रचनाओं में जाति व्यवस्था के अंतर्गत सवर्णों ने दलितों को हमेशा गाँवों से एवं शहर से दूर रहने दिया एवं सम्मान से जीने का अधिकार नहीं दिया, दलितों को स्कूल, मंदिर, तालाब व घरों में प्रवेश नहीं दिया। सवर्णों एवं पिछड़ों ने दलितों का तिरस्कार किया, छुआछूत और अस्पृश्यता के कारण दलितों को हर रोज अपमानित जीवन जीने पर मजबूर किया।

दलितों में बाल-विवाह, बहुविवाह, अनमेल-विवाह भी देखने को मिलता है। लेकिन दलितों के यहाँ विवाह को लेकर कोई कठोरता दिखाई नहीं देती है। पुरुष या स्त्री कोई भी अपने संबंध विच्छेद कर सकता/ती है और किसी से भी विवाह कर सकते है। तलाकशुदा स्त्री या विधवा स्त्री का विवाह दलित समाज में देखने को मिलता है। पुलिस व्यवस्था व गाँव के मुखिया, सरपंच, अधिकारियों का डर दलित समाज में दिखता है। दलित समाज में चोरी, डकैती, नशाखोरी, अवैध धंधों का वर्णन दलित आत्मकथा में मिलता है। समाज ने दलितों को कोई अधिकार एवं सम्मान से जीवन जीने से वंचित रखा। संविधान लागू होने के बाद भी दलित समाज अपने अधिकार के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। दलित समाज में भी उच्च जाति एवं निम्न जाति के भाव दिखाई देता है। जाति व्यवस्था का यह रूप सवर्ण, पिछड़े जातियों में ही नहीं है, बल्कि निम्न जातियों में भी देखने को मिलते है। महार, चमार से स्वयं को श्रेष्ठ समझते हैं, जैसे जाटव, चमारों से अपने को श्रेष्ठ समझते हैं,

चमार, भंगी से अपने को श्रेष्ठ समझते हैं। इस तरह से दलित समाज के आंतरिक जातिवाद के स्वरूप भी देखने को मिलते हैं। दलितों में भी उच्च और निम्न दलित के रूप दिखाई देते हैं जिससे दलितों का शोषण होता है। दलित आत्मकथाओं में दलित समाज किसान कम ही दिखाई देते हैं, वह सवर्णों के खेत में खेती, मजदूर, हरवाही करते हैं। दलितों के पास भूमि नहीं है जिससे दलित समाज आर्थिक विपन्नता या भूखमरी का शिकार हो रहा है। खेती न होने के कारण ही दलितों का शोषण होता है। दलितों के पास पेट भरने को भी अनाज नहीं होता जिसका वर्णन हिंदी और मराठी आत्मकथाओं में मुख्य रूप से मिलता है।

दलित आत्मकथा में दलित समाज के धार्मिक जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। दलितों में स्थित धार्मिक अंधविश्वास, धार्मिक विधि, देवदासी प्रथा, पोतराज, बलि प्रथा तथा धर्म परिवर्तन जैसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है। दलित वर्ग अशिक्षित, अज्ञानी गरीब होने के कारण देवी-देवताओं पर अधिक श्रद्धा रखता है। इसी श्रद्धा से धार्मिक क्रियाओं का आयोजन करता है और अंधविश्वासों में फँसता चला जाता है। मराठी दलित आत्मकथा में पोतराज, देवदासी प्रथा का वर्णन मिलता है। लड़की का विवाह ईश्वर के साथ बचपन कर दिया जाता है जिसे देवदासी कहा जाता है। माँ- बाप अपनी लड़की को ईश्वर की सेवा के लिए छोड़ देते हैं। बड़े लड़के को भी ईश्वर के लिए छोड़ दिया जाता है जिसे पोतराज कहते। लड़की या लड़के की अपनी भावनाएं होती हैं, लेकिन यह समाज अपने बच्चों की भावनाओं पर विचार नहीं करता है और उन्हें इस प्रथा में धकेल देता है। पुरुषों एवं महिलाओं पर अत्याचार को रोकने के लिए पोतराज एवं देवदासी प्रथा बंद होनी चाहिए।

हिंदी एवं मराठी के सभी दलित आत्मकथाओं में शोषण, अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का स्वर, कहीं आक्रोशित रहा है तो कहीं थोड़ा कम है। विद्रोह को व्यक्त करने का अंदाज भी सभी का अपना-अपना है। हिंदी आत्मकथाओं में यह आक्रोश कम दिखाई देता है जबकि मराठी आत्मकथा में यह विद्रोह अधिक दिखाई देता है। आत्मकथाकारों ने अपनी रचनाओं में डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों को महत्त्व दिया है। हिंदी एवं मराठी की दलित आत्मकथाओं में महिला रचनाकारों की संख्या

कम है, लेकिन सभी रचनाओं के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा घर के भीतर और बाहर प्रमाण प्रताड़ित एवं अपमानित होने का वर्णन दिखता है। हिंदी की लेखिका मराठी की तुलना करने पर यह तथ्य सामने आता है मराठी की लेखिकाओं के स्वर ज्यादा तीव्र है। स्त्रियों के साथ दलित पुरुषों का बर्ताव शोषण एवं अत्याचारपूर्ण ही रहा है। आत्मकथा में कहीं-कहीं पुरुष स्त्रियों का साथ देते भी दिखते है। विवाह के पश्चात पुरुष चाहे जितना जुल्म और अत्याचार करें पत्नी को उसी के साथ निभाने की सलाह दी जाती है। जिसका उदाहरण उर्मिला पवार की आत्मकथा में देखने को मिलता है। जब उनकी बहन का पति उन्हें मारता है तो वह मायके आ जाती हैं, लेकिन उनके पिता उन्हें खाना खिलाकर पुनः पति के घर भेज देते हैं। बाद में शोषण और अत्याचार के कारण उनकी बहन मर जाती है। दलित स्त्रियों पर शारीरिक और मानसिक दोहरा शोषण हो रहा हैं। दलित स्त्रियों का पढ़ने के लिए आगे आना किसी चमत्कार से कम नहीं था। दलित स्त्रियों के भयंकर, दुख, दर्द एवं संघर्ष को मुखर करने वाली आत्मकथाएं स्त्री जीवन की वेदना से सीधे साक्षात्कार कराती हैं। दलित समाज के विषय में कोई मुकम्मल जानकारी नहीं मिलती है। दलित आत्मकथा दलित समाज के जानकरी की दस्तावेज की तरह हैं जिससे दलित समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक मूल्य की पहचान होती है और अपने खोये हुए अस्तित्व की पहचान कर सके। दलित आत्मकथाओं के लेखन करते समय आत्मकथाकर अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन भी करता है।तथ्यों की पूर्ण जानकारी का अभाव भी आत्मकथा में देखने को मिलता है।

दलित आत्मकथाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मराठी व हिंदी की दलित आत्मकथाओं का आधार एक ही है। पारंपरिक रुढियों, असमानता को नकारते हुए रचनाएं स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को अधिकार मानती हैं।